सामाजिक संरचना
(Social Structure)

'संरचना' शब्द का प्रयोग साधारणत: किसी रचना की इकाई में अंगों तथा अवयवों के ऐसे प्रतिमानित संबंधों के लिए किया जाता है जो अपेक्षाकृत स्थिर एवं स्थायी होते हैं। अत: किसी वृहत रचना के विभिन्न भागों अथवा निर्णायक तत्वों के आपसी संबंधों में जो एक व्यवस्था अथवा संगठन होता है उसे संरचना कहते हैं। संरचना अंगों की एक व्यवस्थित क्रमबद्धता को प्रकट करती है जिसे अपरिवर्तनीय माना जाता है। यह अपेक्षाकृत स्वयं स्थायी होती है किन्तु इसके अंग परिवर्तनशील होते हैं। इस धारणा के अनुसार, एक वनस्पति शास्त्री किसी पत्ते की संरचना का वर्णन करते समय उसकी बनावट अथवा उसके विभिन्न अंगों के आपसी संबंधों की व्यवस्था में, एक रसायनशास्त्री किसी यौगिक की संरचना, उस यौगिक के तत्वों के संबंधों की व्यवस्था में तथा एक जीवशास्त्री मानव शरीर की संरचना को उसके अंगों, शिराओं, कोशों तथा धमनियों की व्यवस्था के रूप में करता है। एक समाज वैज्ञानिक मानव समाज की संरचना को उसके अंगों अर्थात् सामाजिक संस्थाओं, समूहों तथा व्याधियों की सामाजिक क्रियाओं, भूमिकाओं, प्रस्थितियों तथा आदर्शात्मक व्यवस्था के अपेक्षाकृत स्थायी संबंधों को खोजता है।

सामाजिक संरचना शब्द का प्रयोग **स्पेन्सर और दुर्खीम** की कृतियों से लेकर आधुनिक समाजशास्त्रीय साहित्य में प्रचुर मात्रा में हुआ है। सामान्यत: इसका प्रयोग समाजों को निर्मित करने वाली एक या अधिक विशेषताओं के संदर्भ में किया गया है। फलत: यह शब्द कहीं-कहीं व्यवस्था, संगठन, संकुल, प्रतिमान संरूप और यहां तक कि सम्पूर्ण समाज का पर्याय बन गया है। प्रसिद्ध समाजशास्त्री **पारसन्स** ने भी इसे परिभाषित करते हुए लिखा है कि यह एक ऐसा पद हैं जिसका प्रयोग परस्पर संबंधित संस्थाओं, संगठनों तथा सामाजिक प्रतिमानों की एक विशिष्ट व्यवस्था के साथ-साथ किसी समूह में प्रत्येक सदस्य द्वारा ग्रहण की गयी प्रस्थितियों तथा भूमिकाओं की विशिष्ट क्रमबद्धता के लिए किया जाता है।

किसी सामाजिक समूह की संरचना की बात करते हुए हमारा तात्पर्य उस समूह के आंतरिक संगठन के प्रतिमान अर्थात समूह के सदस्यों के बीच पाए जाने वाले सामाजिक संबंधों के सम्पूर्ण ताने-बाने से होता है। इन संबंधों में सामाजिक क्रिया, भूमिकाएं, प्रस्थितियां, संचार-माध्यम-व्यवस्था, श्रम विभाजन तथा आदर्शात्मक व्यवस्था को सम्मिलित किया जाता है। सामाजिक संबंधों का यह ताना-बाना समाज को उसका आधारभूत रूप प्रदान करता है तथा सामाजिक व्यवहार को सीमाबद्ध करता है। सामाजिक मानवशास्त्र में सामाजिक संरचना तथा सामाजिक प्रकार्य की अवधारणाओं में भेद किया गया है। सामाजिक संरचना को 'स्वरूप' के अर्थ में तथा सामाजिक प्रकार्य को सामाजिक संबंधों के प्रभाव के अर्थ में प्रयोग किया जाता है। 'संरचना' किसी व्यवस्था के स्थिर पक्ष को तथा 'प्रकार्य' उसके गत्यात्मक पक्ष को प्रतिबिंबित करता है।

सामाजिक संरचना के तात्पर्य—**लेवी** के अनुसार, "सामाजिक संरचना अथवा संगठन का तात्पर्य व्यक्तियों के विशिष्ट समूहीकरण से है। सामुदायिक जीवन विभिन्न कार्यों का सम्पादन करने की दृष्टि के निर्मित मानव समूहों के निर्माण से विकसित होता है।" **रेडक्लिफ ब्राउन** के शब्दों में "सामाजिक संरचना के तत्व मनुष्य हैं। स्वयं संरचना संस्थाओं के द्वारा परिभाषित और नियंत्रित संबंधों में बंधे व्यक्तियों की व्यवस्था है।" **मजुमदार और मदान** के कथनुसार, "सामाजिक संगठन का तात्पर्य एक समय विशेष में प्रचलित परस्पर संबंधित भूमिकाओं से है।"

तात्पर्य यह है कि सामाजिक संरचना समाज का वह बाह्य रूप है जो कि समाज विशेष का एक नाम विशेष में सामाजिक समितियों व संस्थाओं के एक निश्चित ढंग से व्यवस्थित हो जाने के फलस्वरूप प्राप्त होता है। सामाजिक संरचना की परिभाषा में इस बात पर बल दिया गया है कि स्वयं समाज की भांति सामाजिक संरचना की कोई स्थिर अवधारणा नहीं है। वह तो एक गतिशील अवधारणा है। इसका रूप या स्वरूप न तो प्रत्येक समाज में एक-

सा होता है और न ही प्रत्येक समय में अर्थात् समय-समय पर प्रत्येक समाज में सामाजिक संरचना में परिवर्तन हो सकता है और होता भी है। सौ वर्ष पूर्व भारतीय सामाजिक संरचना जिस प्रकार की थी, आज निश्चिय ही उस प्रकार की नहीं है। अत: स्पष्ट है कि सामाजिक संरचना समय तथा समाज के अनुसार अलग-अलग होती है।

पारसंस के अनुसार, ''सामाजिक संरचना परस्पर संबंधित संस्थाओं, एजेंसियों और सामाजिक प्रतिमानों तथा साथ ही समूह में प्रत्येक सदस्य द्वारा ग्रहण किए गए पदों तथा भूमिकाओं के विशिष्ट व्यवस्थित रूप को कहते हैं। **जॉनसन** का कथन हैं कि किसी भी चीज की संरचना उसके अंगों में पाये जाने वाले अपेक्षाकृत स्थायी अन्त:संबंधों को कहते हैं। चूंकि सामाजिक व्यवस्था लोगों की अन्त: संबंधित क्रियाओं से बनती है। इस कारण उसकी संरचना को इन क्रियाओं में पायी जाने वाली नियमितता की मात्रा या पुनरुत्पत्ति में ढूंढ़ा जाना चाहिए। **पार्थ** ने इस अवधारणा की कमी पर दृष्टिपात किया है कि सामाजिक संरचना और सामाजिक संगठन में कोई अंतर नहीं है। वह इन दोनों को समाज के दो पहलू समझता है और सामाजिक संगठन के अन्तर्गत वह समाज के परिवर्तनशील नियमों को रखता है तथा सामाजिक संरचना के अन्तर्गत स्थिर नियमों को।

नेडेल, गर्थ तथा मिल्स आदि समाजशास्त्रियों के अनुसार किसी समाज में व्यक्ति अपनी स्थिति या पदों के अनुसार जो कार्य करते हैं या भूमिकायें निभाते हैं उन कार्यों या भूमिकाओं की सम्पूर्ण व्यवस्था को सामाजिक संरचना कहते हैं। पारसंस ने अपनी परिभाषा में इस बात पर बल दिया है कि सामाजिक संरचना का निर्माण अनेक सामाजिक तथ्यों के द्वारा होता है। दूसरे शब्दों में एक सामाजिक संरचना के अनेक अंग होते हैं। और इन अंगों में आपस में इस प्रकार का संबंध होता है कि वे सब एक दूसरे से संबंधित रहते हुए समाज को एक विशिष्ट रूप प्रदान कर सकें। सामाजिक संस्थाएं, एजेंसियां, सामाजिक प्रतिमान तथा सदस्यों की प्रस्थिति तथा भूमिकाएं—ये सभी सामाजिक संरचना के ही अंग हैं। प्रत्येक समाज में ये सब सामाजिक इकाइयां एक निश्चित ढंग से व्यवस्थित रहती हैं। जिसके फलस्वरूप समाज का एक स्वरूप प्रकट होता है। उसी को सामाजिक संरचना करते हैं। प्रत्येक समाज में चूंकि यह व्यवस्थित रूप पृथक-पृथक होता है। इस कारण सामाजिक संरचना भी अलग-अलग ही होती है। उदाहरणार्थ—हिन्दू समाज में विवाह संस्था, जाति प्रथा, परम्परा, आदर्श, पिता की स्थिति तथा भूमिका, माता का परिवार में स्थान, पत्नी का कर्तव्य तथा परिवार में उसकी स्थिति तथा भूमिकाएं आदि एक विशेष प्रकार के संरचना तत्व हैं और वे एक दूसरे से संबंधित भी हैं। जैसे विवाह संस्था जाति प्रथा के द्वारा प्रभावित होती है और जाति प्रथा समाज को विभिन्न समूहों की सामाजिक स्थिति तथा कार्यों को निर्धारित करने, संस्कारों का निदान देने आदि में महत्वपूर्ण नियंत्रण रखती है। ये सब कुछ संबंधित रूप से हिन्दू समाज को स्वरूप या व्यवस्थित रूप प्रदान करते हैं। पारसंस के अनुसार इसी को सामाजिक संरचना कहेंगे। पर इस संबंध में यह स्मरण रहे कि सामाजिक संरचना को एक विशिष्ट व्यवस्थित रूप देने के लिए अर्थात् सामाजिक संस्थाओं, एजेंसियों, प्रतिमानों, स्थितियों तथा भूमिकाओं को एक निश्चित ढंग से सजाने के लिए कोई योजना नहीं बनाई जाती है और न ही अधिक सचेत प्रयत्न करने की आवश्यकता होती है। सामाजिक संरचना का विकास तो सामाजिक अन्त: क्रियाओं के फलस्वरूप ही होता है। सामाजिक संरचना की किसी भी वैज्ञानिक विवेचन में इस बात का अवश्य ही ध्यान रखना चाहिए।

जॉनसन के अनुसार सामाजिक संरचना में अनेक अंग होते हैं। उन अंगों में पारस्परिक संबंध भी पाया जाता है। पर इस पारस्परिक संबंध की एक उल्लेखनीय विशेषता यह है कि यह संबंध अत्यधिक अस्थायी या अस्थिर नहीं होता है। उसमें कुछ उद्देश्यों की पूर्ति करना कदापि संभव न होगा। सामाजिक संरचना में अस्थिरता का तात्पर्य है सामाजिक व्यवस्था का टूट जाना। इसलिए सामाजिक संरचना में स्थिरता का होना अनिवार्य है। पर इस स्थिरता का अर्थ यह नहीं है कि सामाजिक संरचना में कभी कोई परिवर्तन होता ही नहीं है। सामाजिक संरचना भी परिवर्तनशील है। जैसे ही सामाजिक संरचना का निर्माण करने वाले अंगों में परिवर्तन हो जाता है वैसे ही सामाजिक संरचना भी बदल जाती है। सामाजिक संरचना समाज के सदस्यों की अन्त: संबंधित क्रियाओं का फल होती है। समाज के सदस्यों की अपनी सामान्य आवश्यताएं होती हैं और उन आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए उन्हें अन्य व्यक्तियों से अपने को संबंधित रखते हुए क्रिया करनी पड़ती है और उन साधनों या तरीकों को खोज निकालना पड़ता है, जिनके द्वारा उनकी आवश्यकताएं पूरी हो सकें। मानवीय आवश्यकताओं की पूर्ति के इन्हीं साधनों को हम संस्था कहते हैं। उसी प्रकार धार्मिक व्यवहार, संस्कार, प्रथा, परम्परा, आदर्श, मूल्य भूमिका आदि में भी समाज के सदस्यों की अन्त: संबंधित क्रियाएं ही अभिव्यक्त होती हैं। दूसरी ओर इन सब संस्था, व्यवहार, संस्कार, भूमिका आदि के व्यवस्थित रूप को ही हम सामाजिक संरचना कहते हैं। संक्षेप में यह कहा जा सकता है कि ''सामाजिक संरचना अनेक सामाजिक समूहों, समितियों, संस्थाओं तथा व्यक्तियों द्वारा प्राप्त स्थितियों और कार्यों की क्रमबद्धता है।''

सामाजिक संरचना के तत्व

विभिन्न समाजशास्त्रियों ने सामाजिक संरचना में जिन तत्वों

का वर्गीकरण किया है उनको निम्नलिखित तीन भागों में विभाजित किया जा सकता है—

1. सामाजिक समूह

जैसे—परिवार, पड़ोस, समूह आदि प्राथमिक समूह, समुदाय जैसे ग्राम, टाउन, नगर सामाजिक वर्ग और जाति समितियाँ प्रजातीय समूह आदि।

2. अन्त संबंधित संस्थाएं

इसके अन्तर्गत आर्थिक, सामाजिक, राजनीतिक धार्मिक आदि संस्थाओं का समावेश होता है।

3. भूमिकाएं या व्यक्तियों की प्रस्थिति और कार्य

(*i*) **सामाजिक पद**—सामाजिक संरचना की सबसे छोटी इकाई पद होती है। पद के साथ-साथ सम्मान, सत्ता का भाव जुड़ा होता है। सामाजिक पद व्यक्ति को उसके माता-पिता के द्वारा भी प्राप्त होता हैं। इन्हें स्वयं व्यक्ति भी प्राप्त करता है।

(*ii*) **सामाजिक भूमिका**—सामाजिक भूमिका किसी व्यक्ति के उसकी परिस्थिति के अनुरूप आचरण करने की प्रत्याशा है। इसका संबंध व्यक्ति के कार्यों तथा दायित्वों से जुड़ा होता है। साथ ही यह भी जान लेना आवश्यक है कि व्यक्ति की एक ही भूमिका नहीं होती। जैसी-जैसी सामाजिक परिस्थितियाँ होती हैं वैसी-वैसी भूमिकाएं भी। कभी-कभी व्यक्ति अपनी भूमिका को निभाने में धर्म संकट में पड़ सकता है। ऐसी स्थिति में भूमिका में तनाव उत्पन्न हो जाता है।

सामाजिक संरचना की विशेषताएं

1. सामाजिक संरचना एक अमूर्त अवधारणा होती है क्योंकि इसका संबंध व्यवहारों से होता है।

2. इसमें व्यक्ति के आदर्श तथा वास्तविक व्यवहार दोनों ही सम्मिलित होते हैं।

3. सामाजिक संरचना एक गत्यात्मक तथ्य है। सामाजिक संरचना बदलती रहती है, जो भारत का सामाजिक ढांचा आज है वह 50 वर्ष पूर्व नहीं था।

4. इसका अध्ययन व्यक्ति के आपसी व्यवहारों तक ही निहित होता है।

5. किसी भी प्रघटना को सामाजिक प्रघटना की श्रेणी में रखने के लिए उसको सामाजिक संरचना की कसौटी पर कसा जा सकता है।

सामाजिक संरचना व सामाजिक प्रकार्य में संबंध

जैसा कि पहले ही उल्लेख किया जा चुका है कि सामाजिक संरचना व सामाजिक प्रकार्य में कोई संबंध है या नहीं-इस संबंध में विद्वानों में मतभेद है। कुछ विद्वानों का कहना है कि सामाजिक संरचना एक प्रतिमान या ढांचे को व्यक्त करती है और इसके अन्तर्गत प्रकार्य की धारणा सम्मिलित नहीं है। सामाजिक संरचना तो एक बाहरी रूप या स्वरूप है। इसलिए उसमें प्रकार्य का प्रश्न ही नहीं उठता। इस अर्थ में सामाजिक संरचना और सामाजिक प्रकार्य में कोई संबंध नहीं है। इसके विपरीत **हरबर्ट स्टेन्सर, लेवी** आदि का मत है कि सामाजिक प्रकार्य और सामाजिक संरचना एक दूसरे से घनिष्ठ रूप से संबंधित हैं। इन विद्वानों के अनुसार सामाजिक संरचना एक सामाजित संतुलन की स्थिति को व्यक्त करती है और वह संतुलन तव तक सम्भव नहीं है जब तक सामाजिक संरचना के विभिन्न अंग या इकाइयां अ ने-अपने स्थान पर रहते हुए निश्चित कार्यों को न करते रहें।

1. अर्जित पद

अर्जित पद व्यक्ति की सामाजिक क्षेत्र की सफलता पर आधारित होता है। अर्जित पद की परिभाषा करते हुए **यंग और मैक** ने लिखा है 'अर्जित पद जन्म के आधार पर नहीं दिया जाता, बल्कि उनके लिए छोड़ दिया जाता है, जो समाज में सफलतापूर्वक प्रतियोगिता में समान होते हैं अर्थात् जिन पदों को व्यक्ति अपने व्यक्तिगत प्रयासों से प्राप्त करता है, उन्हें अर्जित पद कहते हैं।' आधुनिक युग में इसका अधिक महत्व है। यह व्यक्ति की योग्यता, कार्य-कुशलता, धन सम्मान राजनीतिक पद आदि के आधार पर अर्जित किया जाता है। अर्जित पद की प्रकृति परिवर्तनशील होती है।

2. निर्दिष्ट पद

यह वह पद होता है, जिसके निर्धारण में व्यक्ति की इच्छा या चुनाव का कोई स्थान नहीं होता, जैसे कैदी का पद।

प्रस्थिति निर्धारण के कारक

1. नातेदारी या पूर्वज—पूर्वजों के आधार पर भी व्यक्ति को पद प्रदान किया जाता है, जैसे राजा के परिवार के सदस्यों को पद दिया जाता है। इस प्रकार के पद प्रदत्त पद की श्रेणी में आते हैं।

2. सम्पत्ति (Wealth)—सम्पत्ति के आधार पर भी पद निर्धारित किया जाता है। इस प्रकार के पद अर्जित पद होते हैं।

3. व्यावसायिक योग्यता—व्यक्ति का समाज के लिए योग भी व्यक्ति के पद निर्धारण में महत्व रखता है। जैसे फौज का जनरल। इस प्रकार के पद अर्जित पद होते हैं।

4. धर्म में पद अर्जित होते हैं

5. प्रजातीय विशेषताएं भी पद निर्धारण में महत्व रखती हैं।